पूर्णता के सात सोपान

कृपाल सिंह

मुद्रक :

‘पूर्णता के सात सोपान’

मूल वार्ता (अंग्रेज़ी में) :
'Seven Paths to Perfection'

वर्तमान संस्करण : 2021

मुद्रक :

सत्य के जिज्ञासुओं के प्रति

एक महान वटवृक्ष एक नन्हें बीज के हृदय में छिपा रहता है, जो उपयुक्त पोषण व संरक्षण के साथ पूर्णता में पल्लवित हो सकता है। सभी नन्हें और कोमल रोपित पौधों को हाथ से पानी पिलाने, समय–समय पर छँटनी, खाद डालने और राह के भटके मवेशियों से बचाने के लिए बाड़ लगाने की ज़रूरत होती है। समय के साथ–साथ वृक्ष पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाता है और राहगीरों को छाया देने लगता है, जिससे दूसरों को मदद व प्रेरणा प्राप्त होती है। ठीक उसी प्रकार, नामदान (दीक्षा) के समय बोया गया पवित्र बीज उच्च सदाचारी और प्रेममयी करुणा से बनी प्रचुर व उपजाऊ मिट्टी में सबसे अधिक फलता–फूलता है।

जीवित सत्गुरु द्वारा मानव आत्मा में किया गया हिलोर उसकी लम्बी अग्रिम आध्यात्मिक यात्रा के लिए एक सुखद शुरूआत है। जिज्ञासुओं को इसलिए आत्म–निरीक्षण करने की हिदायत दी जाती है, ताकि इसकी उर्वरता का विकास करके दिव्यता के अंकुर को पूर्ण रूप से पुष्पित किया जा सके।

सात अपेक्षित गुण, जिनको आत्म–निरीक्षण दैनिन्दनी (डायरी) में वर्णित किया गया है, सदाचार के सम्पूर्ण क्षेत्र को भली–भाँति आवृत करने में अपरिमेय रूप से सहायक होते हैं, तथा दिव्य अनुकम्पा की याचना कराने में मददगार बनते हैं। इन पृष्ठों में अलग–अलग शीर्षकों के अंतर्गत इन पर सभी पर विचार–विमर्श किया गया है।

- कृपाल सिंह

सावन–आश्रम,
दिल्ली–7.

1.
अहिंसा

यह एक महान गुण है, जो प्रत्येक को अपने सहयोगी के समान बनाकर मनुष्य में भ्रातृत्व भाव तथा ईश्वर में पितृत्व भाव के सिद्धान्त की अवस्था पर पहुँचाता है। इस गुण के विस्तृत विकास के लिए अति आवश्यक है कि सभी मनुष्यों के प्रति अवगुणों और असफलताओं का तनिक भी ध्यान न करते हुए सहनशीलता को धारण किया जाए। मानव परिवार के महान सिद्धान्त को सभी के भलाई की प्रेममयी व कारुणिक इच्छा पर प्रसारित करने में ख़र्चा कम और लाभ अधिक होता है। एक दिव्य अनुकम्पा से भरा हृदय सभी सदाचारी गुणों की खान है।

समस्या के क़रीबी समीक्षा से पता चलता है कि जब सब कुछ हमा. री इच्छा के अनुरूप होता रहता है, हमें कोई भी चिंता या उत्तेजना नहीं होती। जब कार्य हमारी इच्छाओं के विपरीत हो रहा है या हमारी भावनाओं का हनन किया गया है, तब प्रतिक्रियाओं की कड़ी आरम्भ हो जाती है। परिणामतः हमारे विचारों में, कर्म में, शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण के अनुसार हिंसा का प्रारम्भ होता है। हममें से कई अपने प्रति किए गए वास्तविक या कल्पित अपमान को उसी अनुपात में लौटा देने को अपना वैध धर्म समझते हैं। शायद ही कोई–कोई ऐसा होता है जो उसे जाने देने, माफ़ कर देने में और उसे भूल जाने को एक गुण समझता हो। ईसा मसीह ने सदैव दो मूलभूत गुणों को सिखाया :

(1) **अपने पड़ोसियों को भी उसी प्रकार प्रेम करो, जैसा कि अपने आप को करते हो।**

– पवित्र बाइबिल (यथा मरकुस 12:31)

(2) **अपने शत्रुओं से प्रेम करो।**

– पवित्र बाइबिल (यथा मत्ती 5:44)

क्या इसका अर्थ यह है कि अपने शत्रुओं को कायरता या दुर्बलता के कारण प्रेम करना और उनसे बाज़ आना? नहीं, इस विचारधारा के मूल में कुछ सदाचार व दिव्यता भरा है।

वह स्थान जहाँ आग जल रही होती है पहले तो ख़ुद गर्म हो जाता है बौर फिर अपने वातावरण को भी गर्मी प्रदान करता है। इसी प्रकार क्रोध की अग्नि होती है। एक कल्पित दुराचार काँटे की भाँति हमारे मन में चुभता रहता है। जब इसकी प्रबलता सहनशीलता की हद के बाहर हो जाती है, तो व्यक्ति घृणा व तिरस्कार की लपटों में फूट उठता है और दायें–बायें गाली–गलौज करने लगता है। वह अपने मानसिक संतुलन को खो बैठता है और नासूर की भाँति एक आसपास के वातावरण में दुर्गंध फैलाता रहता है। हमारी अधिकतर त्रुटियाँ और चोटें हमारी अपनी विचारधारा की प्रक्रिया हैं और ऐसे विचार असंख्य अन्य विचारों को जन्म देते हैं।

हम इस द्वेषपूर्ण चक्र से सिर्फ़ जीवन के प्रति अपनी विचारधरा को बदल कर ही निकल सकते हैं। हम अपने सहज धैर्य को बीतते बुलबुलों और भापदार नकारात्मक बातों के लिए, जिनसे कोई प्रयोजन नहीं निकलता, भला क्यों उजाड़ें? हम इस मनघड़न्त व कल्पना की बातों पर ध्यान न देकर, उचित होगा यदि जीवन के ऊँचे आदर्शों, अपनी आन्तरिक दैवी शक्ति और बाह्य दैवी शक्ति पर अधिक ध्यान दें। यदि हम वास्तव में परमात्मा को चाहते हैं तथा हृदय से ईश्वर प्राप्ति की कामना करते हैं, तो हमें उसकी सम्पूर्ण रचना से प्रेम करना चाहिए, क्योंकि परमात्मा प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। सेंट जॉन ने बल देकर घोषणा की :

जो व्यक्ति प्रेम नहीं करता, वह प्रभु को नहीं जानता।

– पवित्र बाइबिल (I यूहन्ना 4:8)

कबीर साहब ने कहा है मनुष्य की आत्मा ईश्वर के दैवी नूर का ही अंश है :

कहु कबीर इहु राम की अंसु।।

– आदि ग्रंथ (गोंड कबीर, पृ०871)

इस कारण हमें अपने प्रेममयी प्राकृतिक आवास, और और सब कुछ जो प्रेम है और इससे संबधित है, में ही रहना चाहिए क्योंकि प्रेम ही सब कुछ, अंदर और बाहर, को सुंदर बना देता है। हम जीते इसलिए हैं क्योंकि हमें प्रभु के प्रेम, जो जीवन–सिद्धान्त ही है, का वरदान मिला है। प्रेम, जीवन व ज्योति पर्यायिक हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उसके प्रेम का ही व्यक्त स्वरूप है औ इसी में वह वास करता है। फिर, यह कहा गया है :

एक नूर ते सब जगु उपजिआ कउन भले को मंदे।।

– आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती, कबीर, पृ०1349)

मूल रूप से हमारी जड़ें प्रभु की ज्योति और प्रेम में गहरी बैठी हैं, भले ही हमें इसका आभास न हो क्योंकि बाहरी जगत में पूरी तरह से धँसे होने के कारण हमें अंतर में झाँकने का मौक़ा ही नहीं मिल पाता है, और हमें भीतर क्या विद्यमान है, जो कि सभी तत्वों का सार है, सब जीवन का स्त्रोत, जो प्रभु का प्रेम और ज्योति है, इसका किंचित मात्र भी आभास नहीं हो पाता। काश कि हम इसे जान पाते और अपने कार्यशील दैनिक जीवन में इसे ढ़ाल पाते, तो हम उसके प्रेम के बिना, जिसके प्रेम से हम जीते हैं और जिसमें सब जीवन व्याप्त है, जी नहीं पाते।

अहिंसा अर्थात अ–हिंसा आध्यात्मिक जीवन का व्यावहारिक पहलू है और उस फल के समान है, जो जीवन रूपी वृक्ष पर उत्पन्न होता है।

2.

सत्य

ईश्वर सत्य है, और सत्य ईश्वर है। सच बोलने वाला व्यक्ति सदा प्रभु की ज्योति में काम करता है। उसे दुनिया की कोई चीज़ डरा नहीं सकती। सदा दिव्य ज्योति के पहनावे ओढ़े, वह प्रभु की सहजता में कार्यरत रहता तथा स्वयं को रखता है क्योंकि प्रभु ही उसका लंगर और समर्पण स्थल है।

असत्य कदापि नहीं बोलो। यदि आप ऐसा करते हैं, तो प्रथम स्वयं को धोखा देते हैं और तत्पश्चात् दूसरों को। और फिर, एक झूठ को छिपाने के लिए तुम्हें दूसरा झूठ बोलना पड़ेगा। इसलिए, "अपने प्रति सच्चे बनो अपने आपसे विश्वासघात मत करो" को अपना आदर्श–वाक्य बनाना चाहिए। यदि व्यक्ति अपने आप से सच्चा है, वह किसी से नहीं डरता "क्योंकि वह अपने भीतर प्रभु के प्रति सच्चा है, जो सभी हृदयों में विद्यमान है।" इसलिए वह केवल सत्य बोलगा, सत्य सोचेगा, और सत्य का अनुसरण करेगा क्योंकि वह क़दम–क़दम पर मिलती दैवीय सहायता से परिचित है। विपत्ति उसे डिगा नहीं सकती, दुर्भाग्य उसे हिला नहीं सकता, प्रतिकूलता उसे रोक नहीं सकती क्योंकि करुणामयी प्रभु–सत्ता उसकी ढ़ाल व सहायक है और उसकी मदद के लिए कहीं भी और सब जगहों पर तत्पर रहती है। ऐसा हृदय अन्य सभी गुणों का धाम बन जाता है, जो स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं, जिन्हें सहानुभूतिशील सहयोग प्राप्त होता है।

सत्य का अर्थ केवल सत्य बोलने और सत्य का विचार करने मात्र से ही नहीं है, अपितु जीवन को सही प्रकार से चलाने से है। सत्य सब से ही ऊपर है, परन्तु इससे भी ऊँचा है, सत्यता से परिपूर्ण व्यावहारिक

जीवन व्यतीत करना। हमारे कार्य आदर्शमयी होने चाहिएँ, ताकि उनसे यह प्रतीत हो कि हम मनन की एक उदात्त परंपरा से संबधित हैं, जो कि सत्य, धर्मनिष्ठता तथा प्रेम से ओतप्रोत है।

एक वृक्ष अपने से उत्पन्न फलों से ज्ञात होता है। आध्यात्मिकता के दैवी वृक्ष के लिए भी आवश्यक है कि उसका पोषण अहिंसा तथा सत्य रूपी जल से किया जाए। सत्य, कबीर साहब कहते हैं, सभी गुणों से महान है, जबकि असत्य सभी पापों से प्रधान है :

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (साच का अंग 1, पृ.141)

सच्चाई की सच्चाई मानव आत्मा के गर्भगृह में वास करती है, पर इसे खोदकर निकाला जाना है, जिससे इसका सदैव खुले तौर पर व्यावहारिक रूप से अनुसरण किया जा सके। सच्चा ध्वनि–सिद्धान्त सब जीवन का स्रोत है तथा इससे दिव्य धरा पर सम्पर्क करके ही हम सचमुच सच्चे बनते हैं और अपने जीवन को सच्चाई के साँचे में ढ़ाल पाते हैं। कबीर साहिब ने चारों युगों में, जिनमें उन्होंने अवतार धारण किया, ध्वनि–सिद्धान्त का ही प्रचार किया।

सत्यता के अभ्यास से तथा सच्चे जीवन के संचालन से, प्रत्येक व्यक्ति प्रभु के प्रेम में रंग जाता है और पूर्णरूप से सभी के साथ उदार होकर प्रेमपूर्वक व्यवहार करता है। प्रतिदिन के अभ्यास द्वारा इस शब्द से सम्पर्क स्थापित करने से ही मनुष्य अपने जीवन को पवित्र बना सकता है तथा दैवी अनुकम्पा को प्राप्त करने का योग्य पात्र बन सकता है।

3.
ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य ही जीवन है, और इसका पतन मृत्यु है। संयम के गुण का पालन, जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में, सांसारिक हो या आध्यात्मिक, सफलता प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। एक सच्ची–सुच्ची ज़िंदगी का निर्वाह उपजाऊ मिट्टी है, जिसमें अध्यात्म का पवित्र बीज सबसे अधिक फलता–फूलता है। इसके लिए विचारों, शब्दों तथा क्रियाओं में संयम का प्रतिबंध अति आवश्यक है। अन्यथा हर प्रकार का विष मन की गहराई तक जाकर अपना प्रभाव डालता है तथा अनेक वर्षों की असंख्य अपवित्रताओं की वृद्धि करता है। ब्रह्मचर्य का पोषण एक कठोर कार्य है, जिसके लिए एक लम्बे जीवन संघर्ष की आवश्यकता, जो कि काफ़ी थकाने वाली होती है, पड़ती है। जो कोई ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे धन्य हैं क्योंकि वे प्रभु–पथ पर अग्रसर होने में अधिक सक्षम हैं, उनसे जो स्वयं–संतुष्टि के पथ के घृणित दलदल में धंसे हैं। एक सामान्य संयम से पूर्ण विवाहित जीवन, जैसा कि धर्म पुस्तकों में अंकित है, वास्तव में अध्यात्म पथ में बाधक नहीं।

जीवन के तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि हमारे वातावरण तथा रहन–सहन का काफ़ी असर रहता है। हमारी मानसिक सोच के बनने में आहार का एक महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। लिया गया भोजन, पाचन के पश्चात, जीवन के आवेगों को अपने ही रंगों में रंगता है। हमारी हड्डियाँ और रक्त भी हमारे आहार के रंगों में रंगे जाते हैं। दूषित व सड़े पदार्थ जीवन का स्रोत नहीं हो सकते। इसलिए अध्यात्म पथ के सत्गुरुजन सदा सभी प्रकार के मीट, मछली, मुर्गी व अंडे (जीवन रहित तथा जीवन सहित) के आहार तथा सभी नशीले पेयों या मादक

दृव्यों आदि से परहेज़ पर बल देते हैं क्योंकि जहाँ एक मानसिक इन्द्रियों को स्तब्ध करता है, तो दूसरा आंतरिक पाशविक प्रवृत्तियों को भड़का कर जीवन के उच्चतर मूल्यों के प्रति निष्ठुर बना देता है। "जैसा सोचोगे, वैसा बन जाओगे," एक पुरातन कहावत है, जिसमें हम जोड़ सकते हैं कि "जैसा होवे अन्न, वैसा होवे मन।"

एक सामान्य भोजन में साग़–सब्ज़ी, फल, घी, मक्खन, रोटी तथा पनीर आदि को उचित परिमाण में लेने से ही, उच्च पौष्टिक भोजन जो शारीरिक शक्ति के लिए आवश्यक है, प्राप्त होता है, जिससे जीवन के सभी उत्तरदायित्व—सांसारिक हों या आध्यात्मिक, पूर्ण रूप से संचालित किए जा सकते हैं। एक प्रतिष्ठित चिकित्सक कहते हैं, "हम अपनी कब्र रसोई में खोद लेते हैं और अपने दातों से उसे और गहरा कर लेते हैं।" और फिर, इस समस्या से सम्बंधित है, कर्मों का दूरगामी व अटल विधान। "जैसा बाओगे, वैसा काटोगे," एक कहावत है, जिस पर टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। संसार में प्रत्येक वस्तु का अथवा संसार की प्रत्येक वस्तु का ऋण चुकाना पड़ता है। यहाँ तक कि हमारे तथ. ाकथित प्रसन्नताओं तथा मनोरंजनों तक का भी मूल्य चुकाना है। तुम किसी के जीवन का संहार, उस जुर्म का बदला दिए बिना नहीं कर सकते। "पाप का मूल्य," हज़रत ईसा के शब्दों में, "मृत्यु" है। – पवित्र बाइबिल (रोमियों 6:23)

ब्रह्मचर्य का पालन करने से, हम केवल जीवन के उस अमूल्य पदार्थ को सुरक्षित नहीं रखते (जो शरीर में एक अमूल्य भंडार है और किसी भी प्रकार इसका कम अनुमान नहीं लगाया जा सकता), अपितु यह वास्तव में जीवन धारा में बुनी, पर दुनिया के प्रबल भँवर में खोई दिव्यता के साथ सम्पर्क स्थापित करने में भी सहायक है। खोये हुए पावन 'ज्योति' व 'श्रुति' धारा के जीवनदायिनी धागे, जिन्हें सत्गुरु ने व्यक्त किया हो, किसी भी समय के लिए नहीं बंधे रह सकते जब तक हम ब्रह्मचर्य के जीवन में स्थापित न हों। एक ख़ाली मन शैतान का घर हो. ता है, और इसीलिए अभिसक्त नामों का स्मरण और गुरु की

प्रबल याद का उपदेश दिया जाता है। यह मन को थामने और जीवन रूपी अशान्त सागर में शान्ति से इसे थामे रखने में सहायक होता है। यह अच्छी तरह से जान लेना चाहिए कि सत्गुरु के संरक्षण के अलावा, किसी भी प्रकार के बौद्धिक उपलब्धियाँ या तार्किक दलीलें उस यंत्रणादायी दु:ख की घड़ी में सहायक नहीं होतीं।

पक्के फल तभी तक ताज़ा रहते हैं, जब तक वह शाखाओं के साथ लगे रहते हैं। परन्तु जब एक बार वह तोड़ लिया जाता है, तब वह या तो केवल शहद में या ठंडा रखने की आधुनिक रेफ़्रिजरेटरों में ही अपनी ताज़गी रख सकता है। सत्गुरु की अपार दया ही एक अनन्त शहद के समान है और उसकी प्रेम भरी छत्रछाया, एक ठंड में रखने वाले बेशक़ीमती भंडार के समान है, जहाँ पर कोई इस अतीत अशान्ति और दु:ख से छुटकारा प्राप्त करने की आशा प्राप्त करता है। प्रभु के पावन कार्य हेतु समर्पित जीवनों ने अपने बेशक़ीमती अनुभवों को लिपिबद्ध किया है, जिनसे प्रचुर मात्रा में विदित हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए आशा मौजूद है यदि वह अपने प्रयत्नों के प्रति गम्भीर है, और इससे भी अधिक कि उसे किसी वास्तविक सक्षम सत्गुरु से सही ढ़ंग से निर्देशन व मदद मिले। जिस प्रकार प्रत्येक महात्मा का अतीत (भूत) है, उसी प्रकार प्रत्येक पापी मनुष्य का भविष्य है, परन्तु शिरोधार्य गुरु–सत्ता की दया–मेहर के बिना कुछ भी प्राप्त करना सम्भव नहीं है। शिशुरूपी शिष्य को चाहिए कि वह अपने को किसी भी कार्य में संलग्न रखे व गुरु द्वारा पवित्र और ईश्वरीय नाम को सुरत से अन्तर में जपता रहे और इसके लिए उसे बुरी सोहबत और प्रतिकूल वातावरण से अपने को अलग रखे– जैसे कि अश्लील साहित्य व कला और दूसरों की आँखों में आँखें डालना– विशेषकर दूसरे लिंग के और शाकाहारी भोजन को दृढ़ता से अपना कर, जिसे सन्तुलन से पकाया गया हो और अल्प मात्रा में। ये सभी कुछ सहायक चीज़ें हैं, जिनका यदि स्थिरता से पालन किया जाये, तो शिरोधार्य

गुरु–सत्ता की अनुकम्पा से उनसे उचित समय पर निश्चित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

यहाँ ब्रह्मचर्य के सम्बंध में कतिपय शब्दों की आवश्यकता है। साहित्यिक दृष्टिकोण से इसका अर्थ है वह मार्ग (किसी के जीवन के निमार्ण का क्रियात्मक मार्ग), जो ब्रह्म व ईश्वर प्राप्ति में ले जाता है। इसमें सभी इंद्रियों को वशीभूत करके उचित मार्ग पर चलाना होता है। दूसरे शब्दों में, इससे जीवन में संयम, संतुलन व आत्म–नियमन का जीवन, जिसमें सभी प्रकार के खाद्यों व पेयों से परहेज़ शामिल है। इस प्रकार का जीवन प्रभु या ब्रह्म के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अति आवश्यक है और साधकों को इसके दृढ़ता से पालन करने की हिदायत दी जाती है।

4.
प्रेममय नम्रता

नम्रता संतों का आभूषण है। यह उन्हें मनुष्यों और प्रभु– दोनों की आँखों में प्रशंसित करती है। एक पूर्ण गुरु प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा की झलक देखता है।

गुरु शिशु–शिष्य से बराबरी के स्तर पर मिलता है और उसे अपना मान कर चलता है। जिस प्रकार फलों से लदी शाखाएँ उनके वज़न से झुक जाती हैं, उसी प्रकार से गुरु, दिव्य ख़ज़ानों लद कर, सभी मिलनेवालों से प्रेमपूर्वक मिलता है, बिना किसी सामाजिक व धार्मिक मतभेद के, जो उसके बहुमूल्य धन को बाँटने तथा पूर्ण पिता के घर के पथ पर चलने आये होते हैं।

"अपने से पहले दूसरों की सेवा करो," एक अति दुष्प्राप्य दौलत है। क्योंकि वही "अपनापन" दूसरों में भी कार्यशील है, इसलिए उनकी सेवा में इसके अपने लिए ही कार्यरत रहने में आनन्दित होना चाहिए। "अपनापन" व "सेवा"– दोनों दिव्यता के दो पक्ष ही हैं। अनेक रंगों से बनी परिकल्पनाओं व प्रतिकृतियों से निर्मित प्रतीत होने के बावजूद, सृष्टि की साँझी प्रकृति की समझ से सन्तुलन का भाव बनता है, जिससे फिर प्रशांत व उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त होती है, और व्यक्ति सभी की सेवा में कार्यरत हो जाता है और उसी के अनुकूल जीवनदायी सिद्धांत को सम्पूर्ण सृष्टि में काम करते देखता है। जिस तरह एक छोटा सा दन्त–चक्र भी एक बड़े यन्त्रविन्यास के लिए अनिवार्य होता है और उपयोगी सिद्ध होता है, उसी प्रकार, सभी कुछ सौंदर्य से भरा व दिव्यता का व्यक्त रूप है, जिसका प्रभु के भाणे के अन्तर्गत की

कोई न कोई उपयोग है। इस प्रकार का भाव प्रेममयी भ्रार्तत्व के रेशमी डोरों को बलशाली बनाता है और प्रभु व सत्गुरु– दोनों को भाता है।

मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआइआ ततु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म०1, पृ०470)

सेंट ऑगस्टीन ने भी नम्रता के सद्‌गुण पर अधिक बल दिया है। "प्रथम नम्रता, अंतिम नम्रता और सदैव नम्रता," यही उनकी हिदायत थी जब वे छात्रों के दीक्षान्त समारोह में भाषण देने के लिए उठे। इसके अलावा उन्होंने कहा कि उनके पास अन्य कुछ देने के लिए नहीं है। इसी प्रकार कबीर साहिब ने एक बार यह ऐलान किया :

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
ता के संग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी संग मीन।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (दीनता का अंग 1, पृ.140)

यही केवल एक ऐसा सद्‌गुण है, जो व्यक्ति को संतों के दरबार में प्रवेश प्राप्त करवाता है। प्रेमी को अपने हृदय में बिठाने के लिए व्यक्ति को अपना हृदय अन्तर से सभी प्रकार से ख़ाली करना पड़ता है और फिर उसी के प्रेम में हर पल रहना होता है। कबीर साहिब ने कहा है :

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
ता के संग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी संग मीन।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (दीनता का अंग 1, पृ.140)

यह नम्रता का चरम है। कबीर साहिब ने यह भी कहा :

कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (दीनता का अंग 12, पृ.141)

गुरु नानक सदा अपने आप को "नीच नानक," "बेचारा नानक," "दास नानक" आदि कहकर पुकारा करते थे।

गुरु अमरदास जी परमात्मा से सदा यही प्रार्थना करते थे कि,

रामा हम दासन दास करीजे।।

– आदि ग्रंथ (कलिआन मृ०4, पृ०1326)

मेरे अपने सत्गुरु कहा करते थे कि उसके भक्तों के लिए अपनी चमड़ी के जूते बनाना पसंद करेंगे।

दुनियावी सम्पत्ति व धन का झूठा अहंकार या अध्यात्मिक ज्ञान व बौद्धिक उपलब्धियों, माद्दी वस्तुओं व पदवी के मान से आध्यात्मिक साधक के मन को भले ही पलट दे, यह सभी कुछ क्षणभंगुर ही है और समय के साथ इनका लोप हो जाता है। एक हृदय जो नम्रता से भरपूर है, प्रभु कृपा पात्र बनता है। जब वह हृदय उस प्रभु की अपार दया से भरकर छलकने लगता है, तो दूसरों को बाँटने के योग्य हो जाता है। मानव जन्म प्रभु कृपा से बड़े सौभाग्य से प्राप्त हुआ है और इसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक पूर्णता को पाना है। एक विनम्र व्यक्ति के लिए, आत्मिक विकास के उच्च हित में कोई भी बलिदान ज़्यादा नहीं है, जबकि एक अहंकारी व्यक्ति अंतहीन समय तक इंतज़ार करेगा और जब उसे इसका मौक़ा मिलता हो, वह इसे स्वीकार नहीं करेगा। समय और धारा किसी का इन्तज़ार नहीं करते। मानव जन्म विधाता का विकासक्रम की चढ़ती सीढ़ी पर दिया हुआ एक बेशक़ीमती तोहफ़ा है, जिसका उच्चतम लक्ष्य आत्मिक पूर्णता है, जिसके लिए हम सभी यहाँ आए हैं। जिन्हें परलोक के रहस्यों में दीक्षादान के लिए चुना गया है और दिव्यता के पवित्र ज्योति व स्वार्गिक ध्वनि के गुणों से जोड़ा गया है, वे सौभाग्यशाली हैं। अब यह हमारे ऊपर निर्भर है कि जब तक यह मौक़ा मिल पाता है, हम इसका हम लाभ उठायें। यदि हम एक भी क़दम बढ़ायेंगे, वह हमारी ओर लाखों क़दम बढ़ा कर हमें मिलने और हमारा सत्कार करने आयेगा।

अध्यात्म पूर्णता की प्राप्ति का विचार उत्पन्न होना ही हमारे जीवन का शुभ परिचायक है और व्यक्ति के जीवन का सही तथा महानतम उद्देश्य है। ऐसे उत्कृष्ट विचार की पैदाइश दिव्य अनुकम्पा के संचार से ही सम्भव है। जीवन का यह महान रहस्य, बुद्धिबल व तर्क शक्ति से पूर्ण नहीं हो सकता। इनसे ज्ञान की वृद्धि तो होगी, परन्तु सुबुद्धि नहीं आएगी अपितु यह व्यक्ति अपने समझ–बूझ तथा बड़प्पन का अभिमान

पैदा करके प्रभु के धाम में प्रवेश करने में असमर्थ हो जाता है। सभी ज्ञान का सार यही है कि हम अपनी वर्तमान की जटिलताओं से जकड़ी तथा चिंताओं से भरी स्थिति को देखें, जिसमें हम अनिच्छा से बंधे हैं और इससे छूटने में असमर्थ हैं।

5.

आहार

जैसा पहले ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत चर्चा में कहा गया था, आहार आध्यात्मिक जिज्ञासु के जीवन का एक महत्वपूर्ण व अभिन्न अंग है और इसलिए इसको उचित महत्व देना चाहिए। सभी निषिद्ध खाद्यों व पेयों से, चिकित्सकी राय के बावजूद, निष्ठा से परहेज़ रखना चाहिए क्योंकि इनमें से कोई भी योजनाबद्ध जीवन अवधि को बढ़ा नहीं सकते, और न ही ये पोषणदायी हैं। यह वास्तव में एक त्रुटिपूर्ण विचार है कि माँस व अंडे तन्दरुस्ती व ताकत प्रदान करने में सक्षम हैं; प्रत्युत्तरतः इनसे दैहिक प्रवृत्तियों भड़क उठती हैं, जिनसे लम्बी अवधि में शक्ति का भारी क्षय होता है।

यह एक सुखद तथ्य है कि दुनिया भर के लोग अब धीरे–धीरे शाकाहारी आहार के लाभ समझने लगे हैं तथा इस विचारधारा के अग्रणियों ने इसके महत्व को लोगों के मध्य पेश करने का बीड़ा उठाया है। अब तक दुनिया में इस विषय पर चौदह से अधिक सम्मेलन हो चुके हैं। भारत में भी सन् 1957 में इनमें से एक का संचालन करने का श्रेय प्राप्त हुआ, जब विभिन्न देशों के प्रतिनिधिगण आपसी विचार विनिमय के लिए दिल्ली जैसे पुरातन व ऐतिहासिक शहर में पधारे।

जन–मत के एक प्रगतिशील वर्ग ने आजकल “शाकाहार” से अलग “शाक–मत” पर ज़ोर देना प्रारम्भ किया है। यदि हम बकरियों, घोड़ों, बैलों और हाथियों को देखें, तो पायेंगे कि वे कितने हृष्ट–पुष्ट होते हैं– कि हम मशीनी शब्दावली में भार क्षमता को “अश्व–शक्ति” कहते हैं।

सेंट पॉल ने कुरिंथियों से धर्मपत्र में कहा :

माँस पेट के लिए और पेट माँस के लिए, परन्तु परमात्मा ने दोनों को ही नष्ट कर देना है।

– पवित्र बाइबिल (कुरिंथियों 6:13)

फिर कहा :

न तो माँस का खाना उचित है, न तो मदिरा का सेवन करना और न ही ऐसी किसी अन्य वस्तु का प्रयोग, जिससे तुम्हारा भाई ठोकर खाकर गिरता हो।

– पवित्र बाइबिल (रोमियों 14:12)

और ईश्वर ने कहा : मैंने तुम्हें हर प्रकार की बूटी दी है, जो बीज धारण किए है, जो कि सम्पूर्ण धरती पर है और हर वृक्ष के हर फल में उस पेड़ के बीज को दिया, जो तुम्हें माँस के स्थान पर दिए हैं।

– पवित्र बाइबिल (उत्पत्ति 1:29)

एसीनियों का 'पावन बारह का सुसमसचार' कहता है :

इसलिए तुम माँस का भक्षण नहीं करोगे, नहीं शक्तिशाली पेय लोगे क्योंकि बच्चा अपनर माता के गर्भ से ही प्रभु को समर्पित होगा और न तो माँस न ही शक्तिशाली पेय लिया जायेगा, न ही उस्तरा उसके सिर को छूएगा। (पाठ 2:7)

अब उनकी माता मेरी व पिता जोज़फ़ प्रत्येक वर्ष ईस्टर का पर्व मनाने यूरुशलम जाते थे और अपनी परम्परा के अनुरूप, सभी लोग रक्तस्राव, माँस–भक्षण और शक्तिशाली पेयों से बचते थे। (पाठ 6:1)

जो तुम्हारे सामने पेश किया जाये, उसे मत खाओ। जिसे जीवन का हनन करके प्राप्त किया गया हो, उसे मत छुओ क्योंकि यह उचित नहीं है... (पाठ 17:7)

प्रभु–पुत्र विनाश हेतु नहीं आया है, बल्कि बचाने के लिए, न ही जीवन लेने के लिए, परन्तु देह व आत्मा को जीवन देने के लिए। (पाठ 17:9)

6.
निष्काम सेवा

मनुष्य तीन तत्त्वों को धारण किए है– शरीर, मन और आत्मा। इस कारण व्यक्ति को इन तीनों ही दृष्टिकोणों से अपने बन्धुओं की सेवा करनी चाहिए। सेंट पॉल का उपदेश है :

प्रेम द्वारा एक–दूसरे की सेवा करो।

– पवित्र बाइबिल (गलातियों 5:13)

एक फ़ारसी ग्रंथ में लिखा है :

सेवा से सेवक ऊँचा उठता है।

निष्काम सेवा एक महान गुण कहा जाता है और इसका प्रतिफल स्वयं में ही निहित है। यह महान सत्पुरुषों के पवित्र उपदेशों का प्रमुख सार है। जीवित सत्गुरु निष्काम सेवा का प्रतीक होता है। वह सम्पूर्ण विश्व में अपने प्यारे बच्चों की सहायता के हेतु सदैव तत्पर रहता है और इसके लिए तनिक भी अपने शारीरिक आराम का ध्यान नहीं करता। यह दिव्य क़ानून है, जिसका वह अपने आप में अनावरण व पूर्ति करता है। अपने भ्राताओं के प्रति करुणा से ओतप्रोत हो, वह उन सबको उस "महान चक्र" से उनकी सर्जनधारा को अंतर में उल्टा कर रक्षा करने वाली जीवनधाराओं का सम्पर्क देकर मुक्त करता है।

जितनी अधिक व्यक्ति सेवा करता है, उतनी ही उसकी आत्मा का अधिक विस्तार होता चला जाता है और समयानुकूल सम्पूर्ण सृष्टि से उसका आलिंगन हो जाता है। इसलिए हमें सत्गुरुओं के संदेश को कोने–कोने तक पहुँचाने का बीड़ा उठाना चाहिए, ताकि लोगों को इस अचरज भरे अवसर के बारे में पता चले, जिससे वे इसका उपयुक्त रूप से लाभ उठा सकें।

फिर, निष्काम सेवा अपने साधनों व क्षमता के अनुरूप अलग अलग रूप धारण कर सकती है। कुछेक ज़रूरतमंद, ग़रीब, पददलित, बीमार व असक्षम लोगों की उनकी व्यथा झेलने में मदद कर सकते हैं।

यदि आप किसी अस्वस्थ व्यक्ति की सेवा करते हैं या किसी पीड़ित व्यक्ति के पास उसकी सहायता के लिए खड़े हैं, तो आप एक ईश्वरीय कार्य कर रहे हैं। आप भले ही उनके दु:ख व पीड़ा न हर पायें, पर आप अपनी मीठे वचनों व कार्यों से उनके दर्द को कम करने में मददगार हो सकते हैं। प्रत्येक बोला गया मीठा वचन तथा उसके दु:ख में बढ़ाया हुआ सहायता का हाथ व्यक्ति के मन तथा शरीर की पवित्रता को बल देता है। प्रेम से भरपूर हृदय ही प्रभु की दया का पात्र है, क्योंकि प्रभु प्रेम ही है। सेंट जॉन कहते हैं :

जो व्यक्ति प्रेम नहीं करता, वह प्रभु को नहीं जानता।

– पवित्र बाइबिल (I यूहन्ना 4:8)

प्रेम की कोई सीमा नहीं, न ही इसको कोई वर्ग के भेद–भाव ज्ञात हैं। यह सभी बाधाओं को पार करते हुए, सबकी ओर, समान रूप से, बिना रोक–टोक के बहता है।

फिर, एक प्रेममय हृदयशील धनाढ्य व्यक्ति अपनी दौलत को दरिद्रों या ज़रूरतमंदों के साथ बाँटना चाहेगा और उसे दान व परा. ेपकारी कार्यों में लगाना चाहेगा।

आय का दशम् भाग दान देने की पद्धति प्राय: संसार के सभी मुख्य धर्मों में प्रचलित है और इसका गंभीर महत्त्व है क्योंकि इसके देने से व्यक्ति की ईमानदारी का, तथा यह ज्ञान होता है कि वह कितना उदारशील है। पुरातन लेखों से यह ज्ञात होता है कि मिस्त्र से अफ़ग़ानिस्तान के सभी पूर्वी देशों में और सभी ईसाई जगत में दशांश की परम्परा रही है, जिससे आम लोगों की भलाई की जा सके। मुसलमानों में “ज़क़ात” की प्रथा है, जिसके अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का चालीसवाँ हिस्सा दान में देता है। सिक्खों और हिन्दुओं में यह प्रथा “दसवन्ध” के

नाम से जानी जाती है। सत्गुरु इसके अतिरिक्त और भी आगे बढ़ा कर भजन पर भी चौबीस घंटों में कम से कम ढाई घंटे का समय अर्पित करने का उपदेश देते हैं। सत्गुरु और भी आगे कहते हैं कि प्रभु के साथ संबंध स्थापित करो और अपनी इस कमाई को असहाय लोगों की सहायता में व्यय करो। कबीर साहिब कहते हैं :

दान दिये धन न घट्टै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (उदारता का अंग 8, पृ.73)

परन्तु दान स्वतंत्र और मन से इच्छा रहित होना चाहिए और देने के पश्चात् कोई प्रतिफल प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं होनी चाहिए या सभी प्रकार के बाह्य बंधनों से मुक्त होकर देना चाहिए, वरना इससे मुक्ति न होकर ऐसा दान बंधन में बाँधने वाला हो जाता है। पुनः दान अनुपयुक्त स्थान पर नहीं होना चाहिए, वरन् इसका प्रयोग संसार के पीड़ित लोगों के दुःखों का निवारण करने में किया जाना चाहिए। वास्तव में सर्वज्ञानी सत्गुरु सबसे निपुण पारखी हैं, क्योंकि उन्हें यह पता है कि शिष्यों के दिए अंशदान का व्यय किस प्रकार उचित रूप से करना है। चाहे कर्म भले ही कितना ही अच्छा हो, क्योंकि प्रत्येक कर्म की प्रतिक्रिया निश्चित है और बंधन पैदा करती है, यह सतर्कता से विशेष रूप से सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसके एड़ी–चोटी के पसीने की कमाई का दुरुपयोग न हो, ताकि पुराने कर्मों को नष्ट करने के बजाय, कोई नए कर्म न बन पायें। यह सोने की बेड़ी कहलाती है, जैसे कि श्री कृष्ण ने योद्धा राजकुमार, अर्जुन को समझाया, जब उन्होंने कहा कि सभी कर्म– चाहे भले या बुरे– बराबर रूप से बंधन के साधन हैं तथा उनकी बेड़ियाँ स्वर्णिम या लोहे की हो सकती हैं। लॉयोला के सेंट इग्नेशियस हमें बताते हैं :

पुण्य और पाप के बीज हमारे भीतर पहले ही मौजूद हैं।

यह सिर्फ़ इस पर निर्भर है कि हम इनमें से किसे अपनी आत्मा के बाग़ में आरोपित करते हैं।

7.
भजन-सुमिरन

आध्यात्मिक अभ्यास आत्मा के जिज्ञासु के जीवन में एक विशेष महत्त्व रखता है और इस कारण यह प्रतिदिन का "आवश्यक तथा नियमित" कार्य होना चाहिए। पाँच शब्दों का सिद्धि सहित पवित्र नाम, जो दीक्षा के समय उच्चारण करवाकर या सुरत के द्वारा दिया जाता है, कोई कठिन कार्य नहीं, बल्कि बड़ा गंभीर अर्थ रखता है। इसमें योग्यता प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त प्रेम और लगन की आवश्यकता है। आप इस बात की क़दर करेंगे कि गुरु के पवित्र नामों में उसकी जीवन प्रेरणा है, जिसके कारण शिष्य इंद्रियों के घाट से ऊपर उठकर अन्तर में ऊँचे दिव्य-मंडलों को देखने वाला बन जाता है और इस प्रकार अन्तर की यात्रा करके पूर्ण शान्ति तथा ख़ुशी पाने वाला बन जाता है। प्रतिदिन का कुछ समय ध्यानाभ्यास के लिए निर्दिष्ट करना ज़रूरी है।

ध्यान पर नियमित रूप व उत्साहपूर्वक से दिया गया समय आत्मा की ख़ुराक़ होती है, जिसके कारण अन्तर की दिव्य-ज्योति का साक्षात्कार होता है तथा ऐन्द्रियक स्तर पर प्राप्त अज्ञान का अन्धकार समाप्त होता है। यह आत्मा रूपी बर्तन का प्रतिदिन साफ़ करना है, जिसके परिणामस्वरूप गुरु की ईश्वरीय अनुकम्पा प्राप्त होती है। समाधि व ध्यान का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग दिव्य धुनों का श्रवण करना है। यह जीवन प्रदान करने वाली दिव्य धुनें दाहिनी ओर से आती हैं। यह ध्यानाभ्यास का महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसे अनपेक्षित नहीं करना चाहिए न ही जिससे मुँह मोड़ना चाहिए। दीक्षित होने के पश्चात शिष्य का धर्म है कि प्रत्येक दिन अपने आध्यात्मिक अनुभवों की वृद्धि करे तथा गुरु-कृपा से किसी भी

हद तक इसका विस्तार करे, जिससे उत्कृष्ट तेजस्विता व परमानन्द के नये आयाम खुलते जायें।

संक्षेप में, आत्म–अवलोकन अनावश्यक शाखाओं की कटाई के समान है तथा भजन व ध्यान अर्थात् अभ्यास सांसारिक जीवन रूपी वृक्ष के तने को काटने में सहायक होता है।